



अध्याय १२
भक्ति योग

अर्जुन उवाच ।

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।

ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १२-१ ॥

अर्जुन ने कहा - योग में सबसे बेहतर कौन स्थित है - जो सदैव आपकी उपासना करते हैं या जो आपके अवैयक्तिक, अविनाशी रूप में स्थित रहते हैं?

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ १२-२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा - जो अपने मन को मुझ पर एकाग्र करते हैं, निरंतर मेरी महिमागान करते हैं, और मुझ पर अत्यंत श्रद्धा रखते हैं - मैं उन्हें परम सिद्ध मानता हूँ।

~ अनुवृत्ति ~

अब तक भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अपने व्यक्तिगत, अवैयक्तिक और सर्वव्यापी पहलुओं के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के योगियों की व्याख्या की है। अब अर्जुन ने विशेष स्पष्टीकरण के लिए पूछा है कि कौन सा मार्ग सर्व-श्रेष्ठ है - भक्ति-योग का जो सीधे श्रीकृष्ण पर केन्द्रित है और जो भक्ति के कार्यों से संपन्न होता है, या अवैयक्तिक-मार्ग जिसमें श्रीकृष्ण के ब्रह्मन (ब्रह्म-ज्योति) की प्रभा पर ध्यान केंद्रित करने का प्रयास होता है।

आध्यात्म के पथ पर शुरुआत करनेवाले बहुत से व्यक्तियों का यही प्रश्न है - कौन सा मार्ग बेहतर है, व्यक्तिगत या अवैयक्तिक? यहां, श्रीकृष्ण कहते हैं कि व्यक्तिगत मार्ग सर्व-श्रेष्ठ है। भक्ति-योगी जिसका ध्यान श्रीकृष्ण के सुन्दर रूप पर केन्द्रित है एवं जो पूरी श्रद्धा तथा दृढ़ संकल्प के साथ उनकी महिमागान करता है वही योगियों में सर्व-श्रेष्ठ है।

आत्म-साक्षात्कार के व्यक्तिगत मार्ग पर चलने वाले भक्ति-योगी को वैष्णव कहा जाता है। अवैयक्तिक मार्ग पर चलने वाले योगी तीन प्रकार के होते हैं - ब्रह्मवादी (वेदांतवादी), शून्यवादी (बौद्ध) और मायावादी (आदि शङ्कराचार्य के अनुयायी)। ब्रह्मवादी वे हैं जो स्वयं (आत्मा) को श्रीकृष्ण के शारीरिक आभा (ब्रह्म-ज्योति) में विलीन हो जाना चाहते हैं। शून्यवादी सब कुछ मिटाकर,

शून्य में प्रवेश करना चाहते हैं, और मायावादी स्वयं ही भगवान् बनने का प्रयास करते हैं।

ब्रह्मवादी ब्रह्म-ज्योति में विलय होना चाहते हैं, किंतु उन्हें श्रीकृष्ण के व्यक्तिगत रूप के बारे में अल्प जानकारी या कोई जानकारी नहीं होती। अतः वे कई जन्मों के बाद ही श्रीकृष्ण के पास पहुँचते हैं, जैसा कि इस अध्याय के श्लोक ४ में बताया जाएगा। आत्म साक्षात्कार के इतिहास में, ब्रह्मन के साक्षात्कार में असफल हुए योगियों एवं ब्रह्मवादियों के बहुत से उदाहरण हैं, यहाँ तक कि चार-कुमार, वसिष्ठ मुनि, शुकदेव गोस्वामी और अन्य जैसों के भी विवरण हैं, जिन्होंने ब्रह्मन की प्राप्ति के पश्चात्, भक्ति-योग के उच्च आनंद के लिए अपनी प्राप्ति का त्याग कर दिया। शून्य के साधकों को कभी सफलता नहीं मिलती क्योंकि शून्य का अस्तित्व ही नहीं है। कहीं कोई शून्य नहीं है। श्रीकृष्ण के बाहर या परे कुछ भी नहीं है और इसलिए शून्यावादियों को जीवन के अंत में बहुत निराशा होती है। मायावादी, श्रीकृष्ण के व्यक्तिगत रूप को माया कहकर उसका अस्वीकार करते हैं और वे स्वयं भगवान् बनना चाहते हैं। मायावादियों को अपराधी माना जाता है और वे जन्म और मृत्यु के संसार में लौट आते हैं।

भगवद्गीता में सर्वत्र श्रीकृष्ण के उपदेश एकरूप है कि वे बारबार इस बात की पुष्टि करते हैं कि भक्ति-योग ही सर्वश्रेष्ठ है। सभी तरह के योगियों, ज्ञानियों, दार्शनिकों, एवं समाज-सेवियों में, भक्ति-योगी जो बिना किसी भौतिक इच्छाओं के या मोक्ष की कामना के पूर्ण रूप से श्रीकृष्ण में निमग्न हैं, वही सबसे श्रेष्ठ है और उन्हें अत्यंत प्रिय हैं।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

भक्ति-योग के सर्वोच्च स्तर पर व्यक्ति सभी भौतिक इच्छाओं, भौतिक गतिविधियों, एवं मोक्ष की कामना से रहित होता है। इस तरह के भक्ति-योग को श्रीकृष्ण की इच्छाओं के अनुकूल किया जाना चाहिए। (भक्ति-रसामृत-सिन्धु १.१.११)

इस बात की और भी पुष्टि, अब तक के सबसे बड़े अवैयक्तिक दार्शनिक श्रीपाद आदि शङ्कराचार्य ने की है, जिन्होंने अपने शिष्यों को डांटकर कहा था कि उन्हें केवल श्रीकृष्ण की उपासना करनी चाहिए। कुछ और करने की आवश्यकता नहीं।

भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढ मते ।
सम्प्राप्ते सन्निहिते काले न हि न हि रक्षति डुकृञ् करणे ॥

हे मूर्ख छात्रों, व्याकरण के नियमों को रटना और तुम्हारी तार्किक अटकलबाजियां तुम्हें मृत्यु के समय नहीं बचा पाएंगी। केवल गोविन्द को भजो, गोविन्द को भजो, गोविन्द को भजो! (मोहमुद्गर १)

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यञ्च कूटस्थमचलन्ध्रुवम् ॥ १२-३ ॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ १२-४ ॥

यद्यपि, जो अपने इन्द्रियों को नियंत्रित रखते हैं, जो सभी परिस्थितियों में शांतचित्त रहते हैं, जो सभी जीवों की सहायता करने तत्पर रहते हैं, और जो मेरे अगाध, अवैयक्तिक, अचिन्त्य, अविकारी, सर्वव्यापी, एवं अचल पहलू की उपासना करते हैं, वे भी मुझे प्राप्त करते हैं।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहबद्धिरवाप्यते ॥ १२-५ ॥

जिनका मन मेरे अवैयक्तिक पहलू पर आसक्त है उनके लिए बहुत सी कठिनाइयां हैं। देहबद्ध जीवों के लिए उस पथ पर प्रगति करना बहुत ही कष्टकर होता है।

~ अनुवृत्ति ~

ब्रह्मन (ब्रह्म-ज्योति) श्रीकृष्ण के दिव्य स्वरूप की कांति है। उसी रूप में वह शाश्वत, अगाध, अचिन्त्य, अविकारी, सर्वव्यापी, अचल, और सर्वशक्तिमान है। विष्णु-पुराण में इसका उल्लेख इस प्रकार है -

यत्तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमक्षयम् ।
अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादाद्यसंयुतम् ॥
विभुं सर्वगतं नित्यं भूतयोनिमकारणम् ।
व्याप्यव्याप्तयतः सर्वं तद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥

परम सत्य का ब्रह्मन तत्त्व अव्यक्त, समय से अप्रभावित, अचिन्त्य, भौतिक स्रोत रहित, अक्षय व अक्षीण, अनिर्वचनीय, निराकार, बिना हाथों पैरों या

अन्य अंगों के, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, शाश्वत, भौतिक पदार्थों का स्रोत, भौतिक कारण रहित, सभी वस्तुओं में उपस्थित, हालांकि कोई भी वस्तु उसमें स्थित नहीं, भौतिक जगत का उद्गम, और दिव्यदर्शियों के दृष्टि का विषय है। (विष्णु-पुराण ६.५.६६-६७)

श्रीकृष्ण की कांति उनसे अलग नहीं है, और वे करोड़ों सूर्यों की तरह ज्योतिर्मय हैं।

वासुदेवादभिन्नस्तु वन्यर्केन्दुशतप्रभम् ।
वासुदेवोऽपि भगवांस्तद्धर्मा परमेश्वरः ॥
सवां दीप्तिं क्षोभयत्येव तेजसा तेन वै युतम् ।
प्रकाशरूपो भगवानच्युतम् चासकृविज ॥

अवैयक्तिक ब्रह्म-ज्योति का तेज अनन्त ज्वालाओं, सूर्यों और चंद्रों की भांति है। ब्रह्म-ज्योति वासुदेव (कृष्ण) से अभिन्न है। वासुदेव सर्वमंगल गुणों से भरपूर हैं और उनका स्वभाव ऐसा है कि वे ही परम नियंत्रक हैं। जब वे अपने ब्रह्म-ज्योति के आवरण को हटाते हैं, तब कृष्ण अपना मूल, नित्य, एवं दिव्य स्वरूप प्रकट करते हैं। (नारद पञ्चरात्र)

अव्यक्त में मोक्ष वे लोग चाहते हैं जो भौतिक अस्तित्व से निराश हैं, किंतु उन्हें कृष्ण का कोई ज्ञान नहीं होता। अवश्य भौतिक गतिविधियों से उदासीनता व निवृत्ति की भावना सराहनीय है, परन्तु कृष्ण कहते हैं कि इस मार्ग में बहुत ही परेशानियां हैं।

यदि कोई हर स्थिति में समान रहकर, अव्यक्त ब्रह्म-ज्योति के लिए साधना करता है, और उसी समय अन्य जीवों की सहायता हेतु तत्पर रहता है, तो ऐसा व्यक्ति अंततः कृष्ण चेतना के स्तर पर पहुंच सकता है। परन्तु श्रीकृष्ण कहते हैं कि अव्यक्त का मार्ग अत्यंत कष्टकर है और दुष्प्राप्य है। अतः, अपेक्षित है कि ऐसे पथ पर आरोहण करते अनेक जीवनकाल निकल जाते हैं, और सम्पूर्ण विफलता एवं नुकसान की भी संभावना होती है।

जैसा कि उपर कहा गया है, ब्रह्मवादियों को वेदाध्ययन के साथ साथ इन्द्रियों का नियंत्रण भी करना चाहिए। अनेक जीवनकाल के पश्चात्, ज्ञान की साधना से, जब ब्रह्मवादी यह समझ लेते हैं कि श्रीकृष्ण ही सबकुछ हैं (वासुदेवः सर्वमिति), तब अंततः वे श्रीकृष्ण के पास पहुंचते हैं। शून्यवादी और मायावादी तब तक

कृष्ण के पास नहीं पहुंचते जब तक की वे भक्ति-योग का मार्ग न अपना लें। परन्तु, एक वैष्णव, श्रीकृष्ण के पास एक ही जीवनकाल में पहुंच सकते हैं।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मांध्यायन्त उपासते ॥ १२-६ ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ १२-७ ॥

हे पार्थ, जो सभी कर्मों का त्याग करके उन्हें मुझ पर समर्पित करते हैं, जो मेरा आश्रय लेते हैं, जो मेरे साथ सम्पर्क बढ़ाने हेतु मेरे ध्यान में संपूर्ण रूप से निमग्न रहते हैं - मैं उन्हें तुरंत जन्म और मृत्यु के सागर से पार करता हूँ।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ १२-८ ॥

केवल मुझ पर ही अपने मन एवं बुद्धि को दृढ़ करो और अंततः तुम मेरे पास आओगे। इसमें कोई संदेह नहीं।

~ अनुवृत्ति ~

जो देहबद्ध हैं, उनके लिए इस संसार के सागर को पार करना कठिन है क्योंकि इसमें खतरे बहुत हैं। परन्तु यदि कोई श्रीकृष्ण के पदकमलों के शरण लेता है तो वे उसे आसानी से दुःख के सागर से पार करते हैं, उसी तरह जैसे कोई नैया में किसी को नदी के पार ले जाता है।

कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां ।
षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीर्शन्ति ॥
तत् त्वं हरेर भगवतो भजनीयमधि ।
कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम् ॥

इस जीवन में, अज्ञान के सागर को पार करना बहुत ही कष्टकर है क्योंकि यह सागर, छः हाँगरों (Shark) जैसे इन्द्रियों से ग्रस्त है। जिन्होंने श्रीकृष्ण का आश्रय स्वीकार नहीं किया है, वे इन सागर को पार करने के लिए कठोर नियमों एवं तपस्याओं को झेलते हैं। किंतु तुम्हें केवल श्रीकृष्ण के परम पूजनीय पदकमलों को नाव बनाकर इस घोर सागर को पार करना चाहिए। (श्रीमद्भागवतम् ४.२२.४०)

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥ १२-९ ॥

धनञ्जय, यदि तुम अपना मन मुझ पर स्थिर नहीं कर सकते, तो भक्ति-योग के सतत अभ्यास द्वारा मेरे पास पहुँचने का प्रयास करो।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १२-१० ॥

यदि तुम भक्ति-योग के अभ्यास को कायम नहीं रख सकते तो केवल अपने कर्मों को मुझे अर्पण करो। इस प्रकार तुम परम सिद्धी प्राप्त कर सकोगे।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ १२-११ ॥

यदि तुम यह भी नहीं कर पाए, तो अपना कर्म करो और उसके फलों को मुझे अर्पण करो। मन को को वश में रखकर, अपने कर्मों के सारे फलों का त्याग करो।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ १२-१२ ॥

यदि तुम इस उपदेश का पालन न कर पाए, तो अपने आप को ज्ञान की साधना में नियुक्त करो। यद्यपि, ध्यान, ज्ञान से श्रेष्ठ है। ध्यान से बेहतर है भौतिक लाभों का त्याग, क्योंकि ऐसे त्याग से शांति प्राप्त होती है।

~ अनुवृत्ति ~

भक्ति-योग के दो रास्ते हैं - प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। श्री कृष्ण अर्जुन से श्लोक ८ में कहते हैं कि प्रत्यक्ष है, “अपने मन व बुद्धि को केवल मुझ पर स्थिर करो।” इस स्थिति को रागानुगा-भक्ति, या स्वाभाविकी भक्ति कहते हैं जो शास्त्रों के विधि-नियमों के आधार से स्वतंत्र है। परन्तु रागानुगा-भक्ति की यह स्थिति को प्राप्त करना, विशेषकर नौसिखियों के लिए, आसान नहीं होता। इस हालात में श्रीकृष्ण रागानुगा-भक्ति के अप्रत्यक्ष मार्ग की संस्तुति करते हैं, जो है शास्त्रों के विधि-नियमों का सतत अभ्यास करना, जिसे साधना-भक्ति कहते हैं। यदि ऐसी साधना संभव नहीं है, तो कृष्ण कहते हैं कि हमें उनके लिए कर्म करना चाहिए। यदि यह भी संभव नहीं, तो ज्ञान की साधना करनी चाहिए जिससे कि

हम जान सके कि शरीर क्या है, आत्मा क्या है, और कृष्ण कौन हैं। इस प्रकार किसी भी स्थिति से व्यक्ति क्रमशः ऊपर उठेता और अंततः वह श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष सेवा की रागानुगा-भक्ति के सर्वोच्च स्तर पर पहुंचता है। इसका उल्लेख श्री ब्रह्म-संहिता में इस प्रकार है -

प्रबुद्धे ज्ञानभक्तिभ्यामात्मन्यान्द चिन्मयी।
उदेत्यनुत्तमा भक्तिर्भगवत्प्रेम लक्षणा ॥

जब ज्ञान एवं भक्ति के माध्यम से दिव्य अनुभूति, परम भक्ति उदय होती है, जिसे श्रीकृष्ण के लिए शुद्ध प्रेम की उपस्थिति से पहचाना जाता है, तब हृदय में आत्मा के परमप्रिय तत्त्व का उदय होता है। (ब्रह्म-संहिता ५.५८)

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १२-१३ ॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १२-१४ ॥

वह व्यक्ति जो द्वेष रहित है, सभी जीवों के लिए मित्रतापूर्ण व करुणामय है, जो स्वत्वात्मकता से रहित है, अहंकार से रहित है, सभी परिस्थितियों में निष्पक्ष है, क्षमाशील है, योग का आत्मसंतुष्ट साधक है, आत्मसंयमी है, जिसका संकल्प दृढ़ है, और जिसके मन और बुद्धि मेरे चिन्तन में निमग्न रहते हैं - वह व्यक्ति मेरा भक्त है और इसलिए वह मुझे अत्यंत ही प्रिय है।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १२-१५ ॥

जो न कभी किसी को कष्ट देता है न कभी दूसरों से पीड़ित होता है, जो हर्ष, क्रोध, भय और उद्वेग से मुक्त रहता है, वह मुझे बहुत प्रिय है।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १२-१६ ॥

जो विरक्त, स्वच्छ, निपुण, उदासीन, एवं व्यथा रहित है, और जो सभी स्वार्थी कामनाओं का त्याग करता है, वह मुझे अत्यंत प्रिय है।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ १२-१७ ॥

वह जो न हर्षोल्लास करे न द्वेष करे, जो न शोक करे न आकांक्षा करे, जो दोनों शुभ और अशुभ का परित्याग करे - वह व्यक्ति भक्तिमान है और मुझे बहुत प्रिय है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ १२-१८ ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ १२-१९ ॥

वह जो मित्र और शत्रु दोनों के लिए समान रहे, यश और अपयश, गर्मी और सर्दी, सुख और दुःख, सभी में समान रहे, जो विरक्त रहे, जो निन्दा और प्रशंसा में समान रहे, जो अपने वचनो को नियंत्रित रखे, जो सभी परिस्थितियों में संतुष्ट रहे, जिसे अपने घर या निवास से लगाव नहीं, और जिसका मन स्थिर है - वह व्यक्ति भक्तिमान है और मुझे अत्यंत प्रिय है।

ये तु धामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्धधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ १२-२० ॥

जो श्रद्धावान हैं और जो मुझे से वर्णित इस धर्म के सनातन पथ का अनुसरण मुझे ही सर्वोच्च मानकर करते हैं - वे मुझे अत्यंत प्रिय हैं।

~ अनुवृत्ति ~

दुनिया में सभी शांति और सामंजस्य देखना पसंद करते हैं, किंतु जो वास्तव में परिस्थिति है वह इसके ठीक विरुद्ध है। श्लोक १३ से २० आज की दुनिया के अधिकतम समस्याओं का सरल समाधान प्रस्तुत करते हैं, और वह है व्यष्टि का आत्मसुधार। दूसरे शब्दों में, यदि लोग कृष्ण के बताए हुए इन गुणों को स्वयं में विकसित करने का प्रयास करते हैं, तो दुनिया बहुत बेहतर जगह होगी। आज दुनिया जैसी है, वहां सज्जनों के लिए कोई जगह नहीं है। द्वेष रहित होना, सभी जीवों के लिए मित्रतापूर्ण व दयालु होना, स्वत्वात्मकता की भावना से रहित होना, अहंकार विहीन होना, सभी परिस्थितियों में निष्पक्ष होना, करुणामय होना, आत्मसंयमित होना, और संकल्प में दृढ़ होना आदि, वास्तव में महान

गुण हैं। किंतु इन्हें लोग अपने में कैसे विकसित करें?

स्वतंत्र रूप से इन गुणों को और भगवद्गीता में हर जगह उल्लेखित अन्य वांछनीय गुणों को विकसित करना कठिन है। देखा जाता है कि कभी कभी व्यक्ति में इनमें से एक, दो, या तीन गुण होते हैं, किंतु कहां है वह व्यक्ति जिसमें ये सभी गुण उपस्थित हैं?

श्रीकृष्ण भगवद्गीता में उत्तर देते हैं - भक्ति-योगी बनें, कृष्ण का आश्रय स्वीकार करें, और सब कुछ उनपर समर्पित कर दें। आत्मा स्वाभाविक रूप से ही उन सभी अच्छे गुणों से संपूर्ण है जो कभी भी मनुष्य से वांछनीय हुआ है। जब हमारा मन, हमारी बुद्धि, और चेतना कृष्ण की संगति द्वारा भक्ति-योग की प्रक्रिया से शुद्ध हो जाते हैं, तब सारे वांछनीय गुण विकसित हो जाते हैं। इसलिए, जीवन का खुला रहस्य यही है कि सब भक्ति-योग के योगी बनें। इस प्रकार दुनिया एक बेहतर जगह बन सकती है।

अच्छे गुणों में सबसे ऊंचा गुण है परम पुरुष के लिए भक्ति का गुण, जिसके माध्यम से अन्य सभी गुण बहुलता में विकसित होते हैं। स्वतंत्र रूप से इन गुणों के विकास से कोई कृष्ण को प्रिय नहीं हो जाता। इन सभी गुणों को कृष्ण की भक्ति के अधीन किया जाना चाहिए। जो इस प्रकार जीवन बिताता है वही सच्चा भक्ति-योगी है और वह कृष्ण को बहुत प्रिय है।

ॐ तत्सदिति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां
वैयासिक्यां भीष्मपर्वाणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

ॐ तत् सत् – अतः व्यास विरचित शतसहस्र श्लोकों की श्री महाभारत ग्रन्थ के भीष्म-पर्व में पाए जाने वाले आध्यात्मिक ज्ञान का योग-शास्त्र - श्रीमद् भगवद् गीतोपनिषद् में श्री कृष्ण और अर्जुन के संवाद से लिए गए भक्ति योग नामक बारहवें अध्याय की यहां पर समाप्ती होती है।

